PAGE NO.:
DATE: / /

Ethics of Gita — 'गीता' का प्रमुख उद्देश्य निष्काम कर्मयोग है। निष्काम कर्मयोग प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच, कर्मवाद तथा सन्यास के बीच अथवा भोगवाद और वैराग्यवाद के बीच समीचीन सामंजस्य स्थापित करता है। कर्म तो हमें करना ही है। किन्तु आत्मसंयम के साथ इसे करना चाहिए। साधारणतः, हम फल की आशा रखकर कर्म करते हैं। सांसारिक विषयों के प्रति हममें राग-द्वेष होता है। उन्हें पाने या न पाने की कामना से ही कर्म किए जाते हैं। संसार के प्रति आसक्ति रहने से व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है। फल सदैव हमारी कामना के अनुकूल नहीं होता; क्योंकि कर्मफल पर हमारा कोई अधिकार नहीं रहता, इसलिए हमें कर्म कर्तव्य की भावना से करना चाहिए, न कि कर्मफल की कामना से। इसी को निष्काम कर्म कहते हैं। कृष्ण ने 'गीता' के द्वितीय अध्याय के सैंतालीसवें श्लोक में कहा है — "कर्म करना ही तुम्हारा अधिकार है, न कि कर्म का फल। कभी कर्म-फल को अपना हेतु मत बनाओ। कभी अकर्म में अपनी आसक्ति न रखो।" इस प्रकार, कर्मवाद की फलाकांक्षा और अकर्मवाद की

अकर्मण्यता दूर करने से निष्काम कर्मवाद बनता है।
कामनाओं से प्रेरित होकर कर्म करने से या फल की आशा रखकर कर्म करने से व्यक्ति बंधन में फँसता है। किन्तु निष्काम कर्म करने से मोक्ष मिलता है, इसलिए व्यक्ति को कर्म बिना फल की आशा रखे करना चाहिए। यहाँ गीता के निष्काम कर्म और कांट के 'कर्तव्य कर्तव्य के लिए' (duty for duty's sake) में काफी समानता है। स्वर्ग की प्राप्ति की आकांक्षा से किए गए कर्म भी आसक्तिपूर्ण रहते हैं और इनसे भी व्यक्ति बंधनग्रस्त होता है। निष्काम कर्म वे हैं, जिन्हें व्यक्ति बिना किसी फल की कामना के करता है। ये कर्म व्यक्ति को बंधन में नहीं डालते। मनु भी फल की कामना से किए गए कर्म को अच्छा नहीं मानते।
अनासक्तभाव से कर्म का आचरण करने से व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त होता है। "कर्म में आसक्त हुआ अज्ञानी जैसे कर्म करता है, वैसे ही अनासक्त हुआ ज्ञानी भी लोकसंग्रह को चाहता हुआ कर्म करे।" वस्तुतः संपूर्ण संपूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किए हुए हैं, फिर भी अहंकार से मूढ़ व्यक्ति अपने-आप को कर्ता (doer) मान लेता है।